लेट्टेर्स पेटेंट अपील

माननीय न्यायाधीश एस.एस. संधावालिया और माननीय न्यायाधीश एम. आर. शर्मा के समक्ष

मेहता लाल चंद - अपीलकर्ता।

बनाम

भारत संघ आदि - उत्तरदाता।

1968 का लेट्टेर्स पेटेंट अपील संख्या 12
16 मार्च 1972

विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम (1954 का चवालीस अधिनियम) - धारा 33 - संशोधन के तहत - क्या याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई दिए बिना, दावे को संक्षिप्त में पर खारिज किया जा सकता है - ऐसी सुनवाई - क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर दी जानी चाहिए।

अभिनिर्धारित, कि विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) नियम, 1955, 1963 में संशोधित, के नियम 105 के तहत, केंद्र सरकार एक पुनरीक्षण याचिका को संक्षिप्त में खारिज करते समय एक याचिकाकर्ता को सुनने के लिए बाध्य नहीं है, भले ही जिस मामले की शिकायत की गई है उसमें संपत्ति से संबंधित अधिकारों का निर्धारण शामिल है। जब नियम-निर्माता प्राधिकारी ने 1963 में नियम 105 में प्रावधान जोड़ा, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से संबंधित संपूर्ण प्रश्न उसके सामने था। इस प्रकार जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने अधिनियम की धारा 24 (4) के तहत किसी याचिका को खारिज करने के संबंध में भी सुनवाई के अधिकार को अस्वीकार कर दिया है, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसका इरादा यह नहीं था की केंद्र सरकार को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर भी अधिनियम की धारा 33 के

तहत याचिकाकर्ता की याचिका का निपटारा करते समय उसकी सुनवाई का अवसर देना चाहिए।

1962 के सिविल रिट संख्या 1631 में पारित माननीय श्री न्यायमूर्ति आर.एस. नरूला के 6 अक्टूबर, 1967 के फैसले के खिलाफ लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के तहत अपील।

अपीलार्थी की ओर से एच.एस. गुजराल, अधिवक्ता और श्री जी.एस. गांधी, अधिवक्ता।

एच. एल. मित्तल, सुचेत सिंह के कानूनी प्रतिनिधियों के अधिवक्ता, प्रतिवादी।

निर्णय

माननीय न्यायाधीश एम. आर. शर्मा :

जैसा कि इन तीन मामलों में कानून के सामान्य प्रश्न उठते हैं, अर्थात् एल.पी.ए. 1968 का क्रमांक 12, 1969 का सी.डब्ल्यू. क्रमांक 1090 और 1968 का सी.डब्ल्यू. क्रमांक 3106, इन सभी मामलों का निपटारा एक ही निर्णय द्वारा किया जा सकता है, जिसे हम करने का प्रस्ताव करते हैं।

(2) एल.पी.ए. 1968 की संख्या 12, 1962 की सी.डब्ल्यू. संख्या 1631 से उत्पन्न होती है: उस याचिका में याचिकाकर्ता मेहता लाल चंद, पश्चिमी पाकिस्तान से एक विस्थापित व्यक्ति थे।वह अपने द्वारा छोड़ी गई भूमि के बदले में कृषि भूमि के आवंटन का हकदार था। जबकि वह अभी भी एक असंतुष्ट आवंटी थे, उन्होंने पुनर्वास अधिकारियों को एक रिपोर्ट दी कि सुचेत सिंह (अब उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है) को विभिन्न गांवों में दोगुना आवंटन प्राप्त हुआ था और गांव धुत कलां में उनका आवंटन अनारक्षित होने के कारण रद्द किया जाना चाहिए और वही भूमि

याचिकाकर्ता को आवंटित की जा सकती है। याचिकाकर्ता के दावे को अधीनस्थ पुनर्वास अधिकारियों ने अस्वीकार कर दिया था। उन्होंने विस्थापित व्यक्ति (मुआवजा और पुनर्वास) अधिनियम, 1954 (इसके बाद इसे 'अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 33 के तहत सरकार के समक्ष एक याचिका दायर की। इस याचिका को केंद्र सरकार ने याचिकाकर्ता को कोई सुनवाई दिए बिना संक्षिप्त तरीके से खारिज कर दिया था। उन्होंने इस आदेश को उपर्युक्त रिट याचिका में चुनौती दी, जो इस न्यायालय की एकल पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जिसने 6 अक्टूबर, 1967 के अपने आदेश के तहत इसे खारिज कर दिया। रणजीत सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (1962 पी.एल.आर. 44) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के पहले डिवीजन बेंच के निर्णय का अनुसरण करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्धारित किया कि केंद्र सरकार को अधिनियम की धारा 33 के तहत याचिकाकर्ता की याचिका पर निर्णय लेने से पहले उसे व्यक्तिगत सुनवाई देने के लिए नहीं बुलाया गया था।

(3) विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष अपील में आया है।

(4) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री एच.एस. गुजराल ने जोरदार तर्क दिया है कि पिछले डिवीजन बेंच के निर्णय में लिया गया दृष्टिकोण सही नहीं है और उस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। उनके अनुसार, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से आकर्षित थे और चूंकि केंद्र सरकार ने अपीलकर्ता के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला एक आदेश पारित किया था, इसलिए वे उसे सुनने के लिए बाध्य थे। अधिनियम की धारा 33 के तहत केंद्र सरकार द्वारा प्रयोग की गई शक्तियाँ पुनरीक्षण शक्तियाँ थीं, और उनका मुवक्किल सुनवाई का हकदार था, भले ही पुनरीक्षण को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 तहत संक्षिप्त में खारिज कर दिया गया

था, जो मामले पर अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के नियम 105 के अनुसार लागू होता है। हमें विद्वान अधिवक्ता की दलील में कोई दम नजर नहीं आता और हमारा मानना है कि 1963 में जिस नियम के तहत इसमें परंतुक जोड़ा गया था, उसमें संशोधन ने मामले को किसी भी तरह के विवाद से परे कर दिया है। देखने वाली बात यह है कि क्या केंद्र सरकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से बंधी है अधिनियम की धारा 33 के तहत एक याचिका का संक्षेप में निपटान करते हुए या नहीं।

(5) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता से संबंधित मामले को भारत संघ बनाम कर्नल जे.एन. सिन्हा और अन्य (1970 एस.एल.आर 748) मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शर्तों में आधिकारिक रूप से निपटाया गया है:-

> "जैसा कि इस न्यायालय ने क्रेपक और अन्य बनाम भारत संघ (1969 एस.एल.आर. 445) में प्रेक्षित किया था कि "प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय को सुरक्षित करना है या इसे नकारात्मक रूप से न्याय की विफलता को रोकना है...ये नियम केवल उन्हीं क्षेत्रों में लागू हो सकते हैं जो वैध रूप से बनाए गए किसी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं। दूसरे शब्दों में, वे कानून का स्थान नहीं लेते, बल्कि उसे पूरक बनाते हैं।' यह सच है कि यदि किसी वैधानिक प्रावधान को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप पढ़ा जा सकता है, तो न्यायालयों को ऐसा करना चाहिए क्योंकि यह माना जाना चाहिए कि विधानमंडल और वैधानिक प्राधिकरण परिपक्व न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने का इरादा रखते हैं। लेकिन दूसरी ओर यदि कोई वैधानिक प्रावधान या तो विशेष रूप से या आवश्यक निहितार्थ से प्राकृतिक न्याय के

किसी या सभी सिद्धांतों के आवेदन को बाहर करता है तो अदालत विधानमंडल या वैधानिक प्राधिकरण के आदेश को नजरअंदाज नहीं कर सकती है और संबंधित प्रावधान में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नहीं पढ़ सकती है। प्रदत्त शक्ति का प्रयोग प्राकृतिक न्याय के किसी सिद्धांत के अनुसार किया जाना चाहिए या नहीं, यह शक्ति प्रदान करने वाले प्रावधान के व्यक्त शब्दों और उस प्रदत्त शक्ति की प्रकृति, वह उद्देश्य जिसके लिए यह प्रदान की गई है और उस शक्ति के प्रयोग का प्रभाव पर निर्भर करता है।"

(6) अब हमें क़ानून के प्रावधानों के संदर्भ में यह देखना है कि क्या केंद्र सरकार ने अधिनियम की धारा 33 के तहत अपीलकर्ता की याचिका पर निर्णय लेते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है या नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, अधिनियम की धारा 24 और 33 और उसके तहत बनाए गए नियमों के नियम 105 पर ध्यान देना आवश्यक है: -

"**24. मुख्य बंदोबस्त आयुक्त की पुनरीक्षण की शक्ति** :-- (1) मुख्य बंदोबस्त आयुक्त किसी भी समय इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही का रिकॉर्ड मांग सकता है जिसमें एक निपटान अधिकारी, एक सहायक निपटान अधिकारी, एक सहायक निपटान आयुक्त, एक अतिरिक्त निपटान आयुक्त, एक प्रबंध अधिकारी या एक प्रबंध निगम ने ऐसे किसी भी आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से एक आदेश पारित किया है और वह उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।

(2) उप-धारा (1) के तहत पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि मुख्य निपटान आयुक्त संतुष्ट है कि किसी विस्थापित व्यक्ति को मुआवजे के भुगतान या ऐसे व्यक्ति को दिए गए किसी पट्टे या आवंटन के लिए कोई आदेश दिया गया है उसके द्वारा धोखाधड़ी, गलत प्रतिनिधित्व या किसी भी भौतिक तथ्य को छिपाकर प्राप्त किया गया है, तो इस अधिनियम में कुछ भी शामिल होने के बावजूद, मुख्य निपटान आयुक्त एक आदेश पारित कर सकता है जिसमें यह निर्देश दिया जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति को कोई मुआवजा नहीं दिया जाएगा या उसे दिए जाने वाले मुआवज़े की राशि को कम करना या जैसा भी मामला हो, उसे दिए गए पट्टे या आवंटन को रद्द कर दिया जाए; और यदि यह पाया जाता है कि किसी विस्थापित व्यक्ति को मुआवजा दिया गया है जो उसे देय नहीं है या जो उसे देय राशि से अधिक है, तो ऐसी राशि या अधिकता, जैसा भी मामला हो, मुख्य बंदोबस्त आयुक्त द्वारा जारी प्रमाण पत्र दिए जाने पर, भू-राजस्व के बकाया की तरह ही इसकी वसूली की जाए।

(3) कोई भी आदेश जो किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, उसे सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना इस धारा के तहत पारित नहीं किया जाएगा।

(4) उप-धारा (2) के तहत दिए गए किसी भी आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति आदेश की तारीख से तीस दिनों के भीतर केंद्र सरकार को निर्धारित प्रारूप और तरीके से आदेश के संशोधन के लिए आवेदन कर सकता है और केंद्र सरकार उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकती है जिसे वह उचित समझे।

33. केंद्र सरकार की कुछ अवशिष्ट शक्तियां - केंद्र सरकार किसी भी समय इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही का रिकॉर्ड मांग सकती है और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकती है, जैसा कि उसकी राय में मामले की परिस्थितियों की आवश्यकता है और जो इस अधिनियम या इसके तहत बनाए गए नियमों में निहित कोई भी प्रावधान के असंगत नहीं है।

नियम 105: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI के प्रावधान अपील और संशोधन पर लागू होते हैं - अधिनियम या इन नियमों में स्पष्ट रूप से अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का अधिनियम V) के आदेश XLI में निर्धारित प्रक्रिया, जहां तक लागू हो, अधिनियम के तहत अपीलों और पुनरीक्षणों की सुनवाई और निपटान पर लागू होगी:

बशर्ते कि अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (4) के तहत पुनरीक्षण के मामले में, मौखिक सुनवाई देना आवश्यक नहीं होगा , रिकॉर्ड भेजने के बाद , यदि और पुनरीक्षण के लिए याचिका पर विचार करने के बाद, केंद्र सरकार पुनरीक्षण को खारिज करना उचित समझती है।"

हालाँकि, यह उल्लेख किया जा सकता है कि नियम 105 का परंतुक 13 जुलाई 1963 की एक राजपत्र अधिसूचना द्वारा जोड़ा गया था, जो 20 जुलाई 1963 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित हुआ था।

(7) धारा 24 की योजना से पता चलता है कि मुख्य निपटान आयुक्त को किसी भी कार्यवाही का रिकॉर्ड मांगने का अधिकार था जिसमें उसके किसी

अधीनस्थ अधिकारी ने वैधता या औचित्य के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से उस आदेश पारित किया था। उक्त धारा की उप-धारा (2) मुख्य निपटान आयुक्त को किसी भी दोष को सुधारने के लिए पुनरीक्षण शक्तियां प्रदान करती है, जो किसी विस्थापित व्यक्ति को मुआवजे या ऐसे विस्थापित व्यक्ति को दिया गया पट्टा या आवंटन, आदि, के सम्बंध में उसके किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों में दिखाई दे सकती है। इसी धारा की उप-धारा (3) में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाला कोई भी आदेश पारित नहीं किया जाएगा। उक्त धारा की उपधारा (4) महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पीड़ित व्यक्ति को ऊपर उल्लिखित उपधारा (2) के तहत मुख्य निपटान आयुक्त द्वारा पारित किसी भी आदेश के खिलाफ केंद्र सरकार के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर करने का अधिकार देती है। संक्षेप में, केंद्र सरकार की पुनरीक्षण शक्ति उन मामलों तक ही सीमित थी जिनमें मुख्य निपटान आयुक्त से पुनरीक्षण के लिए संपर्क करने पर किसी विस्थापित व्यक्ति को मुआवजे के भुगतान या किसी पट्टे या आवंटन के संबंध में ऐसे व्यक्ति, आदि के पक्ष में कोई संतोषजनक आदेश पारित नहीं किया गया था।

(8) नियम 105, जैसा कि यह संशोधन से पहले था, बहुत व्यापक शब्दों में दिया गया था। इसमें कहा गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 में निर्धारित प्रक्रिया, जहां तक लागू हो, अधिनियम के तहत अपीलों और संशोधनों की सुनवाई और निपटान पर लागू होगी। आवश्यक निहितार्थ से, यह कहा जा सकता है कि यदि नियम जस का तस रहता, तो अधिनियम की धारा 24(4) के तहत संशोधनों का निपटान करते समय केंद्र सरकार का यह भी कर्तव्य था कि वह अपनी पुनरीक्षण याचिका का निपटान करने से पहले याचिकाकर्ता को सुने।

(9) ऐसा प्रतीत होता है कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने कुछ न्यायिक घोषणाओं के बाद और केंद्र सरकार के समय को बचाने की दृष्टि से मामले पर पुनर्विचार किया, जो प्रभावित व्यक्तियों की सुनवाई करने में खर्च हो जाता था और इसीलिए उक्त नियम में परंतुक जोड़ दिया। संशोधित नियम का प्रभाव यह है कि केंद्र सरकार किसी याचिकाकर्ता की सुनवाई करने के लिए बाध्य नहीं है, जबकि एक पुनरीक्षण याचिका को संक्षिप्त में खारिज कर दिया गया है, हालाँकि जिस मामले की शिकायत की गई थी वह यह था कि एक विस्थापित व्यक्ति का मुआवजा कम कर दिया गया था या उसके पक्ष में दिए गए आवंटन को उसके नुकसान के लिए बदल दिया गया था। इस प्रकार, जहां मामला संपत्ति से संबंधित अधिकारों के निर्धारण से जुड़ा था, वहां भी विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से प्रावधान किया कि केंद्र सरकार को याचिकाकर्ता को मौखिक सुनवाई देने की आवश्यकता नहीं है।

(10) अब, जैसा कि धारा 33 के शीर्षक से ही पता चलता है कि उसमें बताई गई केंद्र सरकार की शक्तियां अवशिष्ट प्रकृति की हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि विधान ने यह शक्ति केंद्र सरकार में निहित कर दी यह देखने के लिए कि किसी भी स्रोत से शिकायतें आती हैं, उनका संज्ञान लेना कि अधिनियम के प्रावधानों को सभी अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा उचित तरीके से लागू किया जा रहा है। यहां तक कि एक राहगीर भी, जिसे अधिनियम के तहत भूमि आवंटन या अन्य लाभ प्राप्त करने में कोई दिलचस्पी नहीं है, केंद्र सरकार से संपर्क कर सकता है। उपयुक्त मामलों में, केंद्र सरकार की शक्तियों से संपन्न अधिकारी न्याय के हित में स्वत: संज्ञान लेकर कार्य कर सकता है। किसी अजनबी की याचिका में केंद्र सरकार की कार्रवाई उसे कोई राहत देने की इच्छा से प्रेरित नहीं होगी, बल्कि यह देखने के लिए होगी कि मुआवजे के पूल में संपत्ति बर्बाद नहीं हो रही है। यदि कोई आवेदक, जिसके पास अधिनियम के तहत किसी भी लाभ का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है, यह आग्रह करता है कि केंद्र

सरकार को उसकी याचिका को खारिज करने से पहले उसे एक नोटिस देना चाहिए था तो याचिका को कम स्कोर पर खारिज कर दिया जा सकता है जिसे लाने का उसे कोई अधिकार नहीं था। याचिका में संपूर्ण चर्चा का सार यह है कि धारा 33 के तहत केंद्र सरकार की शक्तियों की तुलना उन पुनरीक्षण शक्तियों से नहीं की जा सकती है जिनका प्रयोग उसने धारा 24(4) के तहत किया था।

(11) उस समय, जब नियम-निर्माता प्राधिकारी ने एक परंतुक जोड़ा नियम 105 में, केंद्र सरकार के समक्ष कार्यवाही के संबंध में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से संबंधित संपूर्ण प्रश्न उसके दिमाग के सामने था। जब इसने अधिनियम की धारा 24(4) के तहत एक याचिका को खारिज करने के संबंध में भी सुनवाई के अधिकार को अस्वीकार कर दिया, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी का ऐसा इरादा नहीं था की केंद्र सरकार को अधिनियम की धारा 33 के तहत किसी भी याचिकाकर्ता की सुनवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालना चाहिए।

(12) अन्यथा धारण करने से स्पष्ट रूप से बेतुके परिणाम सामने आएंगे, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति जिसके संपत्ति के अधिकार शामिल हैं और उसकी याचिका को बिना सुनवाई के संक्षिप्त में खारिज किया जा सकता है, तो यह तर्कसंगत नहीं है कि एक मात्र अजनबी जिसके पास मुआवजे के पूल के खिलाफ कोई अधिकार या दावा नहीं है, उसे अधिनियम की धारा 33 के तहत उसकी याचिका को संक्षिप्त तरीके से खारिज करने से पहले सुनवाई की अनुमति दी जानी चाहिए।

(13) हमारी राय है कि रणजीत सिंह के मामले (1) (सुप्रा) में डिवीजन बेंच द्वारा लिया गया दृष्टिकोण और साथ ही अपील के तहत विद्वान एकल

न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही है और वैधानिक प्रावधानों की सत्य व्याख्या के अनुरूप है।

(14) हमारा ध्यान लाभ सिंह आत्मा सिंह बनाम भारत संघ और अन्य (ए.आई.आर. 1970 दिल्ली 171) मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ के फैसले की ओर भी आकर्षित किया गया है, जिसने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है।

(15) इस अपील में कोई अन्य मुद्दा नहीं उठाया गया।

(16) 1969 के सी.डब्ल्यू. नंबर 1090 में श्री वासु ने एक और मुद्दा उठाया है। उन्होंने कहा कि विभाग उनके मुवक्किल से किराया स्वीकार कर रहा है और इस कारण से उन्हें अनधिकृत कब्जाधारी नहीं माना जा सकता। हालाँकि, हमारा ध्यान अनुबंध 'डी' की ओर आकर्षित हुआ, जो 27 सितंबर, 1967 को मुख्य निपटान आयुक्त द्वारा पारित एक आदेश है। आदेश का भौतिक भाग निम्नानुसार चलता है: -

> "उन्होंने स्वयं पुनरीक्षण याचिका के आधार अभिकथित किया है कि उन्होंने अपने कब्जे को नियमित करने के लिए आवेदन दायर किया था।"

जब याचिकाकर्ता ने स्वयं अधीनस्थ प्राधिकारियों के समक्ष स्वीकार कर लिया कि उसका कब्जा अनियमित है, तो अब उसके लिए इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क देना संभव नहीं होगा कि प्राधिकारियों ने इस बिंदु पर उसके खिलाफ गलत निर्णय लिया है। किसी भी मामले में, यह तथ्य का एक शुद्ध प्रश्न है और इन कार्यवाहियों में कोई विपरीत निष्कर्ष देना हमारे लिए खुला नहीं है।

(17) 1968 के सी.डब्ल्यू. संख्या 3106 में, श्री वासु ने प्रस्तुत किया कि उनके मुवक्किल द्वारा दायर की गई पिछली याचिका को इस समझ के साथ निरर्थक बताकर खारिज कर दिया गया था कि यदि वह पाकिस्तान से और सबूत लाती है तो उसके मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उनका मुवक्किल 14 अप्रैल, 1945 को पट्टे का एक दस्तावेज लाया था, और 8 मई 1946 की एक रसीद, जिससे पता चला कि उनके मुवक्किल के पास वास्तव में पाकिस्तान में जमीन है।हालाँकि, हमने पाया कि मामले के इस पहलू पर केंद्र सरकार की शक्तियों के साथ प्रत्यायोजित एक अधिकारी द्वारा विधिवत विचार किया गया था इन निम्नलिखित शर्तों में : -

> "इन दस्तावेजों में से एक 14 अप्रैल, 1945 का पट्टा विलेख है। यह विलेख याचिकाकर्ता के पक्ष में मोहम्मद दीन द्वारा निष्पादित किया गया था। इस पर पट्टादाता के हस्ताक्षर नहीं थे। दूसरा दस्तावेज़ 8 मई, 1946 की रसीद थी जिसे याचिकाकर्ता के बेटे श्री हरबंस लाई ने निष्पादित किया था, जिसमें दिखाया गया था कि उन्हें 8 मई, 1946 से 8 मई, 1947 की अवधि के लिए पट्टा राशि प्राप्त हुई थी।"

(18) हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने में केंद्र सरकार की शक्तियों से संपन्न प्राधिकारी द्वारा दिए गए कारण कानून में उचित थे और इन कार्यवाहियों में कोई भी हस्तक्षेप करने का मामला नहीं बनता हैं।

(19) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, एल.पी.ए. 1968 का नंबर 12, 1969 का सी.डब्ल्यू. नंबर 1090 और 1968 का सी.डब्ल्यू. नंबर 3106 खारिज कर दिया गया है, लेकिन लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

माननीय न्यायाधीश एस.एस संधवालिया - मैं सहमत हूँ।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

ऋतु तंवर

प्रिशक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

हरियाणा न्यायिक सर्विसेज़